[1987] 1 उम० नि० प० 244

रघुबीर सिंह और अन्य

बनाम

बिहार राज्य

और

सिमरनजीत सिंह मान

बनाम

बिहार राज्य

19 सितम्बर, 1986

न्यायमूर्ति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी और एम० एम० दत्त

संविधान, 1950—अनुच्छेद 21—तेज गति से अन्वेषण और विचारण का अधिकार—अभियुक्तों के खिलाफ राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का आरोप—अत्यंत नाजुक और राजनीनिक प्रकृति की जटिल समस्याओं के मामले में अन्वेषण—अभियुक्त अपने अधिकारों का प्राख्यान करने में समर्थ फिर भी इससे पहले विलम्ब के लिए आपत्ति न की जानी—मामले के तथ्यों में विचारण में विलम्ब अयुक्तियुक्त और अऋजु नहीं है—अतः अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं हुआ है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 1)—धारा 167(2) परन्तुक (क), धारा 309(2), 437(5), 439(2), 331, 442(1) और 444—उक्त धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर—जमानत समय बीतने, वाद में प्रतिभू के मुक्त किये जाने, आरोप पत्र फाइल किये जाने अथवा धारा 309(2) के अधीन अभिरक्षा में भेजे जाने से निर्वापित नहीं होती—वह तब तक प्रभावी रहती है जब तक कि धारा 437(5) और 439(2) के अधीन वह रद्द न कर दी जाए।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 136 (सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 441, धारा 442)—उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप—प्रस्तुत मामले में जमानत मंजूर करने वाले आदेश निष्पादन न करने में असफल रहने पर अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 32 (सपठित दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973, धारा 211 और 216)—दाण्डिक याचिका—आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य था या नहीं, इस प्रश्न पर विचार करने के लिए उच्चतम न्यायालय अपने आपको विचारण न्यायालय में नहीं बदल सकता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 14—विधि के समक्ष समता—मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाना—प्रस्तुत मामले का विचारण प्रश्नगत न्यायालय को सुरक्षा के हित में एवं अभियुक्त की सुविधा के लिए सौंपा गया था—इससे विधिसम्मत शासन का और विधि के समक्ष समता के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होता।

29/30 नवम्बर, 1984 की रात को ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा पुलिस गश्ती दल ने जोगबानी चौकी के नजदीक एक जीप को भारत-नेपाल सीमा की तरफ तेज गति से जाते

हुए देखा। जीप रोकी गई। जीप में पांच लोग थे। उनमें से एक सिमरनजीत सिंह मान था, जिसे भारतीय पुलिस सेवा से पदच्युत कर दिया गया था। 28 अगस्त, 1984 को उसके खिलाफ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन एक निवारक निरोध आदेश किया गया था। पुलिस गश्ती दल के पूछताछ करने पर पहले तो उन्होंने अपने नाम और पहचान बताने से इंकार कर दिया। इस गश्ती दल के मन में संदेह उत्पन्न हुआ। उनमें से एक अधिकारी ने सिमरनजीत सिंह मान को पहचान लिया। जीप में सवार पांच लोगों की और उनके सामान की तलाशी ली गई। उनमें से एक के पास 62,722.00 रुपए की राशि मिली। अभिकथन किया गया कि उसने पुलिस दल को बहुत बड़ी रकम रिश्वत के रूप में इस शर्त के साथ देने के लिए कहा था कि वे उसे भारत-नेपाल सीमा पार करने देंगे। तलाशी के परिणामस्वरूप उनके दस्तावेजों और अन्य वस्तुओं का अभिग्रहण किया गया। सिमरनजीत सिंह मान के पास 2 जून, 1984 के पत्र की एक प्रतिलिपि मिली जो सिमरनजीत सिंह मान ने मुख्य सचिव, पंजाब को भेजा था। सिमरनजीत सिंह मान के 18 जून, 1984 के त्याग-पत्र की एक प्रतिलिपि मिली, सिमरनजीत सिंह मान का परिपत्र, जरनैल सिंह भिण्डरावाला के दो फोटो, सिमरनजीत सिंह मान का बीरबल नाथ के नाम भेजा गया एक पत्र, अरुण कुमार अग्रवाल नामक एक व्यक्ति को भेजा गया पत्र, जिसमें संदेशवाहक को यथासंभव सहायता करने के लिए कहा था और एक गुमनाम पत्र मिला, जिसके द्वारा सिमरनजीत सिंह मान को यह चेतावनी दी गई थी कि उसे खत्म करने के प्रयास की संभावना है और उसे देश छोड़ने की सलाह दी गई थी। सिमरनजीत सिंह मान ने अभिग्रहण ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। कामीकर सिंह के पास से 62,722.00 रुपए मूल्य के नोट अभिगृहीत किए गए। जगपाल सिंह के सूटकेस में से "सिख एण्ड फारेन अफेयर्स" नामक एक अंग्रेजी की पुस्तक अभिगृहीत की गई और भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका और नेपाल का संयुक्त सड़क मानचित्र अभिगृहीत किया गया। अन्य चीजें जो अभिगृहीत की गई थीं, वे थी नरेन्द्र सिंह भुल्लर द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक, जिसमें सरकार विरोधी और सिख पृथकतावादी प्रचार का उल्लेख बताया गया है, एक नोट-बुक जिसमें विश्व के प्रमुख भूमिगत संगठनों के बारे में सामग्री अंतर्विष्ट थी, जो मान के हस्तलेख में बताई गई थी, एक रजिस्टर, जिसमें यह बताया गया कि मान अमृतसर का इतिहास लिखता था, जिसमें ब्लू स्टार अभियान के फलस्वरूप भारतीय सेना को शत्रु के रूप में वर्णित किया गया बताया गया था। आतंकवादी सिख राष्ट्रवादी वर्णित किए गए बताए गए और मातृभूमि के रक्षक बताए गए तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी, तत्कालीन प्रधानमंत्री का अपमानजनक उल्लेख किया गया था। इसके बाद भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 124-क, 123, 153-क, 505 और 120-ख तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(iii) के अधीन अपराधों के लिए जोगबानी पुलिस थाने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई। अन्वेषण शुरू किया गया। 11 दिसम्बर, 1985 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क, 505 और 120-ख के अधीन अपराधों के लिए पांच अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अररिया के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया। आरोप-पत्र फाइल करने से पहले 4 दिसम्बर, 1984 को सिमरनजीत सिंह मान पर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरोध आदेश तामील किया गया और उसे भागलपुर जेल भेज दिया गया। अन्य चार अभियुक्त भी राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन भागलपुर में निरुद्ध किए

गए। 1 मार्च, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान को छोड़कर अन्य चार अभियुक्तों ने दाण्डिक मामले में जमानत के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया से आवेदन किया, जिसके बारे में उस समय अन्वेषण चल रहा था, और उन्होंने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परन्तुक (क) के अधीन रिहा करने की मांग की। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने उन्हें जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया किन्तु यह शर्त लगाई कि प्रतिभू अरड़िया कस्बे के निवासी हों। चार अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रतिभुओं को पूर्णिया से या नकद में स्वीकार करने की मजिस्ट्रेट से प्रार्थना करते हुए एक अर्जी फाइल की। वह अर्जी अस्वीकार कर दी गई। अन्ततोगत्वा, चार अभियुक्तों को अरड़िया से प्रतिभू मिल गए। किन्तु फिर भी उन्हें रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध थे। सिमरनजीत सिंह मान को भी 28 अक्तूबर, 1985 को उसके आवेदन पर धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़े जाने का निदेश दिया गया। उस पर भी वही शर्त अधिरोपित की गई कि प्रतिभू अरड़िया के ही हों। उसने 29 अक्तूबर, 1985 को आवश्यक प्रतिभू दे दिए। किन्तु उसे रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध था। उसी समय गौरी शंकर झा ने, जो पांचों अभियुक्तों का प्रतिभू था, एक अर्जी फाइल की और उसने न्यायालय में स्वयं हाजिर होकर यह प्रार्थना की कि उसे प्रतिभूत्व से मुक्त कर दिया जाए, क्योंकि वह अभियुक्त व्यक्तियों का प्रतिभू रहना नहीं चाहता है। 5 दिसम्बर, 1985 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने आदेश देकर उस प्रतिभू को मुक्त कर दिया और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 444(2) के अधीन गिरफ्तारी के प्ररूपिक वारन्ट जारी कर दिए। इसी प्रक्रम पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने 9 दिसम्बर, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान के खिलाफ किया गया निरोध आदेश अभिखण्डित कर दिया। न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया के न्यायालय में 14 दिसम्बर, 1985 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई थी। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क और 120-ख के अधीन 18 दिसम्बर, 1985 को मामले का संज्ञान किया। उसी दिन उन्होंने यह भी आदेश किया कि सिमरनजीत सिंह मान को सुरक्षा के हित में भागलपुर में केन्द्रीय कारागार में रखा जाए। 19 दिसम्बर, 1985 को अन्वेषण अधिकारी ने एक अर्जी फाइल करके मामले का तेजी से विचारण करने की प्रार्थना की क्योंकि यह एक विशेष महत्व का मामला था। 20 दिसम्बर, 1985 को अभियुक्त रघुबीर सिंह, कमिकर सिंह और चरणसिंह की ओर से नए जमानत बंध-पत्र फाइल किए गए। किन्तु जमानत बंध-पत्र नामंजूर कर दिए गए। मजिस्ट्रेट ने उन्हें 13 जनवरी, 1986 तक के लिए फिर अभिरक्षा में भेज दिया। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से पहले फाइल की गई एक अर्जी की सुनवाई आरम्भ की। उसमें यह अनुरोध किया गया था कि कृत्यानन्द मिश्र को प्रतिभू के रूप में स्वीकार कर लिया जाए क्योंकि उसे पहले भी एक बार प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया था। प्रार्थना की गई कि तारीख 20 दिसम्बर, 1985 का आदेश वापस ले लिया जाए। वह अर्जी इस आधार पर नामंजूर कर दी गई कि पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। बाद में उसी दिन दो प्रतिभुओं, मीर मजीद और कृत्यानन्द मिश्र, ने यह प्रार्थना करते हुए अर्जी फाइल की कि उन्हें प्रतिभूत्व से मुक्त कर दिया जाए क्योंकि वे अभियुक्त व्यक्तियों के लिए प्रतिभू नहीं रहना चाहते। 7 जनवरी, 1986 को पूर्णिया के सैशन न्यायाधीश ने यह मामला श्री आर० बी० राय, संयुक्त मजिस्ट्रेट,

प्रथम वर्ग, अरड़िया की फाइल से श्री यू० एन० यादव, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया के न्यायालय में भेज दिया। 10 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने एक आदेश देकर 11 जनवरी, 1986 पुलिस कागजों और आवश्यक आदेशों की प्रतियों के लिए नियत की। 11 जनवरी, 1986 को पांच अभियुक्त व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। राज्य की ओर से एक अर्जी फाइल की गई कि अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस कागजात दिए जाने के बाद मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाए और तत्पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों की जमानत रद्द करके उन्हें अभिरक्षा में भेज दिया जाए। दूसरी अर्जी पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश के पास मामला भेजने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से फाइल की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने भी मामले को स्थगित करने के लिए अर्जी फाइल की थी। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों से अनुरोध किया कि वे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अधीन दिए गए दस्तावेज ले लें किन्तु अभियुक्त व्यक्तियों ने यह कहकर उन्हें लेने से इंकार कर दिया कि पहले उनकी अर्जी का निपटारा किया जाए जिससे कि यदि आवश्यक हो तो वे पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय में जा सकें। लोक अभियोजक ने अभियुक्तों की अर्जी का इस आधार पर विरोध किया कि अभियुक्त व्यक्ति सुपुर्दगी कार्यवाहियों के निपटारे में विलम्ब करने की कोशिश कर रहे हैं। अभियुक्त व्यक्तियों के अधिवक्ता यह निवेदन करते हुए प्रतीत होते हैं कि मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में किया जाए। अतः मामला उनके पास भेज दिया जाए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह न्यायालय मामले का संज्ञान पहले ही कर चुका है और संज्ञान करने वाला आदेश वापस नहीं लिया जा सकता। यह प्रश्न कि क्या मामला विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में भेजा जाना चाहिए, उस प्रक्रम पर विचारणीय नहीं होता जब इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा हो कि क्या मामला प्रथमदृष्ट्या बनता है। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने उसके बाद अभियुक्त व्यक्तियों को दस्तावेज की प्रतिलिपियां देने की तारीख 18 जनवरी, 1986 नियत की। 16 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने नकद जमा की स्वीकृति के लिए या अनुकल्पिक तौर पर अरड़िया कस्बे के बाहर के प्रतिभुओं की स्वीकृति के लिए सिमरनजीत सिंह के भिन्न व्यक्तियों द्वारा दिए गए आवेदन नामंजूर कर दिए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि उसे अपने पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन करने की शक्ति नहीं है। इसके बाद उन्होंने जमानत के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया किन्तु वह आवेदन भी नामंजूर कर दिया गया। मजिस्ट्रेट ने मामले का अभिलेख विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) उत्तरी बिहार, पटना को भेजते हुए निदेश दिया कि अभियुक्तों को विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किया जाए। सिमरनजीत सिंह मान ने नकद प्रतिभूति की प्रस्थापना की और जमानत की मांग की। न्यायाधीश ने यह आवेदन इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उच्च न्यायालय चार अन्य अभियुक्तों के आवेदन पहले ही नामंजूर कर चुका है। सिमरनजीत सिंह मान ने विशेष न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ सीधे ही उच्चतम न्यायालय में रिट याचिका फाइल की। चार अन्य अभियुक्तों ने पटना उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ, जिसके द्वारा मुख्य जमानत आवेदन नामंजूर कर दिए गए थे, विशेष इजाजत अर्जी फाइल की, विशेष न्यायाधीश के समक्ष वाली कार्यवाहियों को अभिखण्डित करने के लिए रिट याचिका फाइल की। अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, आरोप-पत्र और साक्षियों के कथनों की प्रतिलिपियां देने के लिए प्रार्थना करते हुए विशेष न्यायाधीश

1986(9) eILR(PAT) SC 1

के समक्ष एक अर्जी फाइल की। अभियुक्तों को सभी आवश्यक कागज दे दिए गए। पुलिस ने आगे अन्वेषण हाथ में लिया और एक अनुपूरक आरोप-पत्र पेश किया था। राज्य सरकार ने एक अधिसूचना निकालकर, भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के मामलों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया। विशेष न्यायाधीश ने वे आवेदन स्वीकार कर लिए। विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह धारा 121-क, 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों के लिए अभियुक्तों का विचारण करने के लिए सक्षम नहीं है क्योंकि अरड़िया के मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द नहीं किया था। इन अपराधों के बारे में विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि अभिलेख विधि के अनुसार आगे कार्यवाही करने के लिए पूर्णिया के जिला और सेशन न्यायाधीश के पास वापस भेजा जाए। अभियुक्त व्यक्तियों ने दो रिट याचिकाएं फाइल कीं। अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से विशेष इजाज़त अर्जियां भी फाइल की गईं। विशेष इजाज़त अर्जियां खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—ऐसा विलम्ब जो इस मामले के अन्वेषण में हुआ है, अकारण नहीं था और यह मामले की प्रकृति के फलस्वरूप था और देश में व्याप्त सामान्य स्थिति के फलस्वरूप था। वर्तमान रिट याचिकाओं को फाइल करने तक अभियुक्तों ने विलम्ब के बारे में कोई गम्भीर आपत्ति नहीं की थी। आरोप-पत्र फाइल किए जाने के बाद कम-से-कम दो मौकों पर अभियोजन अभिकरण ने बहुत तत्परतापूर्वक मामले का निपटारा करने की चिंता व्यक्त की है। लोक अभियोजक ने एक दूसरी अर्जी फाइल करके पुनः प्रार्थना की कि मामले का तेजी से निपटारा करने के लिए जल्दी ही तारीख नियत की जाए। मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि अन्वेषण में और मामले के विचारण में इतना अधिक विलम्ब हुआ है कि तेज विचारण के अभियुक्त के अधिकार के अतिलंघन के आधार पर कार्यवाहियों को अभिखंडित कर दिया जाए। (पैरा 13)

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167(2) के नए परन्तुक का प्रभाव यह है कि यदि अन्वेषण अभिकरण 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं कर पाता है तो अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार हैं। अन्वेषण अभिकरण के व्यतिक्रम के कारण धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को कानूनी तौर पर संहिता के अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए इस अध्याय के अधीन रिहा किया समझा जाएगा। ऐसी कोई काल-सीमा नहीं है, जिसके भीतर जमानत पर छोड़ने के आदेश के बाद उसे निष्पादित किया जाए। प्रायः जमानत पर रिहा करने के आदेश के तुरन्त बाद बंधपत्र देना अभियुक्त व्यक्तियों के लिए कठिन होता है। ऐसा प्रायः अभियुक्त व्यक्तियों की गरीबी के कारण होता है। प्रायः ऐसा भी होता है कि विभिन्न कारणों से अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा पेश किए गए प्रतिभू न्यायालय को स्वीकार्य न हों और ऐसी हालत में न्यायालय में नए प्रतिभू पेश करने पड़े। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा एकदम जमानत न दे पाने के कारण उन्हें जमानत पर छोड़ने के आदेश तब तक प्रभावी रहते हैं जब तक कि धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन आदेश न किया जाए। ये दोनों उपबंध उस मजिस्ट्रेट को जिसने अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत पर छोड़ा है या सेशन न्यायालय को या उच्च न्यायालय को जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने का निदेश देने में और उसे अभिरक्षा के सुपुर्द करने में समर्थ बनाते हैं। चूंकि धारा 167(2) के परन्तुक

1986(9) eILR(PAT) SC 1

के अधीन जमानत पर छोड़ना अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन जमानत पर छोड़ना समझा जाता है, इसलिए धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़ने का आदेश धारा 437(5) और 439(2) के उपबंधों के भी अधीन है और इनमें से किसी भी उपबंध के अधीन आदेश करके उसे निर्वापित किया जा सकता है। ऐसा हो सकता है कि जिस व्यक्ति को प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया है, वह बाद में प्रतिभू बना रहना चाहे। ऐसा आवेदन किए जाने पर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित है कि वह यह निदेश देते हुए गिरफ्तारी का वारन्ट जारी करे कि ऐसे छोड़े गए व्यक्ति को उसके समक्ष लाया जाए। ऐसे व्यक्ति के हाजिर होने पर या उसके स्वयं अभ्यर्पण पर मजिस्ट्रेट उस बंधपत्र को या तो पूरी तरह या वहां तक जहां तक वह प्रतिभू से संबंधित प्रभावोन्मुक्त किए जाने का निदेश दे और ऐसे व्यक्ति से दूसरा प्रर्याप्त प्रतिभू खोजने के लिए कहे और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो वह उसे जेल के सुपुर्द कर सकेगा। अभियुक्त व्यक्ति एक नया स्वीकार्य प्रतिभू पेश करके जमानत पर छोड़े जाने के आदेश का फायदा उठा सकता है। धारा 309(2) "यदि अभियुक्त व्यक्ति अभिरक्षा में है तो उसे प्रतिप्रेषित करने में" न्यायालय को समर्थ···बनाती है। यह न्यायालय को उस समय अभियुक्त को प्रतिप्रेषित करने में सशक्त नहीं करती, जब वह जमानत पर है। वह धारा न्यायालय को जमानत रद्द करने में समर्थ नहीं बनाती। ऐसा धारा 437(5) और 439(2) के अधीन ही किया जा सकता है। जब किसी अभियुक्त व्यक्ति की जमानत मंजूर की जाती है, चाहे धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन या अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन तो जिस एकमात्र ढंग से जमानत रद्द की जा सकती है, वह है धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन कार्यवाही करना। (पैरा 20)

धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन दिया गया जमानत पर छोड़ने का आदेश समय बीतने पर, आरोप-पत्र फाइल करने से, धारा 309(2) के अधीन अभिरक्षा में भेजने से विफल नहीं होता। फिर भी, जमानत पर छोड़ने का आदेश धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन रद्द किया जा सकता है। आमतौर पर जमानत को रद्द करने के आधार मोटे तौर पर ये हैं; न्याय के प्रशासन के सम्यक् अनुक्रम में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप का प्रयास, अथवा न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास अथवा उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग। न्याय के सम्यक् अनुक्रम में साक्षियों को परेशान करके या कूट साक्ष्य प्रेरित करके, अन्वेषण में हस्तक्षेप करके, साक्ष्य आदि का सर्जन करके या उसे गायब करके हस्तक्षेप किया जा सकता है। न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास, देश को छोड़कर या भूगत होकर या अन्यथा अपने आपको प्रतिभुओं की पहुंच से बाहर करके किया जा सकता है। जहां 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर की गई है, वहां आरोप-पत्र फाइल करके दोष को दूर करने के बाद अभियोजन-पक्ष इस आधार पर जमानत को रद्द करने की मांग कर सकता है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करना तथा अभिरक्षा में भेजना आवश्यक है। अंतिम वर्णित स्थिति में वस्तुतः बहुत दृढ़ आधार होने चाहिएं। (पैरा 22)

सम्पूर्ण परिस्थितियों को, जमानत का आरम्भिक आदेश किए जाने के बाद बहुत लम्बा समय बीतना, परिणामस्वरूप परिस्थितियों और स्थिति में परिवर्तन, तथा इन

निदेशों को, जो न्यायालय ने मामले का तेजी से विचारण करने के लिए अब दिए हैं, ध्यान में रखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रक्रम पर इन मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके न्यायोचित कार्यवाही होगी। (पैरा 23)

इस बात पर विचार करने के लिए कि क्या आरोप विरचित करना न्यायायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य है या नहीं, उच्चतम न्यायालय अपने आपको मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में नहीं बदल सकता। (पैरा 14)

विशेष न्यायाधीश का न्यायालय दण्ड विधि संशोधन अधिनियम की धारा 6 के अधीन पूर्णिया खण्ड के लिए बनाया गया था। क्योंकि यह सोचा गया था कि अभियुक्तों के लिए और सुरक्षा के हित में यह सुविधाजनक होगा कि मामले का विचारण भागलपुर में ही किया जाए, जहां अभियुक्त कारागार में थे, न कि मामले का विचारण पटना में किया जाए, जहां पर अभियुक्तों को हर सुनवाई पर भागलपुर से ले जाना पड़ता। अभियुक्तों को सुरक्षा के हित में भागलपुर की कारागार में रखा गया था। दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के अधीन भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय बनाने में और उस न्यायालय में पीठासीन होने के लिए किसी न्यायाधीश के पदाभिधान में कोई दुर्भावना दिखाई नहीं पड़ती। (पैरा 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1985]	[1985] (II) ऑल इंगलैंड लॉ रिपोर्ट्स 585 : **बैल** बनाम **डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रोसिक्यूशन, जमायिका;**	9, 13
[1982]	ए० आई आर० 1982 एस० सी० 1167 : **काद्रा पहाड़िया (II)** बनाम **बिहार राज्य;**	9
[1981]	ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 939 : **काद्रा पहाड़िया (I)** बनाम **बिहार राज्य;**	9
[1981]	[1981] 3 एस० सी० सी० 610 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **चम्पा लाल पंकाजी शाह;**	9
[1979]	[1979] 5 एस० सी० आर० 169 : **हुसैनआरा खातून (I)** बनाम **बिहार राज्य;**	9
[1978]	[1978] 4 उम० नि० प० 219=(1977) 4 एस० सी० सी० 410 : **बशीर** बनाम **हरियाणा राज्य;**	21
[1975]	[1975] 3 उम० नि० प० 1284=ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1465 : **नटबर परिडा** बनाम **उड़ीसा राज्य;**	21

[1958]	ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 376 : **तलब हाजी हुसैन बनाम मोंडकर;**	21
	407 यू० एस० 514 : **बारकर बनाम विंगो;**	9, 13
	37 लॉ एडीशन, सेकंड 56 : **स्ट्रंक बनाम संयुक्त राज्य अमरीका.**	9

आरम्भिक/दाण्डिक अपीली अधिकारिता : 1986 की रिट याचिका (दाण्डिक) सं० 136 [इसके साथ ही 1986 की विशेष इजाजत अर्जी (दाण्डिक) सं० 55, 630 तथा 1986 की रिट याचिका (दाण्डिक) सं० 137 भी सुनी गईं।]

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिकाएं।

याचियों की ओर से	श्री राम जेठमलानी, कुमारी रानी जेठमलानी, सर्वश्री के० एन० मधुसूदन और अशोक शर्मा
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री ए० एन० मुल्ला, डी० गोवर्धन और वासुदेव प्रसाद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ओ० चिन्नप्पा रेड्डी ने दिया।

न्यायमूर्ति चिन्नप्पा रेड्डी—29/30 नवम्बर, 1984 की रात को ड्यूटी पर तैनात सुरक्षा पुलिस गश्ती दल ने जोगबानी चौकी के नजदीक एक जीप को भारत-नेपाल सीमा की तरफ तेज गति से जाते हुए देखा। जीप रोकी गई। जीप में पांच लोग थे। उनमें से एक सिमरनजीत सिंह मान था, जिसे भारतीय पुलिस सेवा से पदच्युत कर दिया गया था। 28 अगस्त, 1984 को उसके खिलाफ राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन एक निवारक निरोध आदेश किया गया था। उस संबंध में उसकी तलाश थी। किन्तु वह भूमिगत हो गया था। पुलिस गश्ती दल के पूछताछ करने पर पहले तो उन्होंने अपने नाम और पहचान बताने से इंकार कर दिया। इस गश्ती दल के मन में संदेह उत्पन्न हुआ। उनमें से एक अधिकारी ने सिमरनजीत सिंह मान को पहचान लिया। जीप में सवार पांच लोगों की और उनके सामान की तलाशी ली गई। उनमें से एक के पास 62,722.00 रुपए की राशि मिली। अभिकथन किया गया कि उसने पुलिस दल को बहुत बड़ी रकम रिश्वत के रूप में इस शर्त के साथ देने के लिए कहा था कि वे उसे भारत-नेपाल सीमा पार करने दें। तलाशी के परिणामस्वरूप उनके दस्तावेजों और अन्य वस्तुओं का अधिग्रहण किया गया। सिमरनजीत सिंह मान के पास 2 जून, 1984 के पत्र की एक प्रतिलिपि मिली जो सिमरनजीत सिंह मान ने मुख्य सचिव, पंजाब को भेजा था। सिमरनजीत सिंह मान के 18 जून, 1984 के त्याग-पत्र की एक प्रतिलिपि मिली, सिमरनजीत सिंह मान का पारपत्र, जरनैल सिंह भिंडरावाला के दो फोटो, सिमरनजीत सिंह मान का बीरबल नाथ के नाम भेजा गया एक पत्र, अरुण कुमार अग्रवाल नामक एक व्यक्ति को भेजा गया पत्र, जिसमें संदेश-वाहक को यथासंभव सहायता करने के लिए कहा था और एक गुमनाम पत्र मिला, जिसके द्वारा सिमरनजीत सिंह मान को यह चेतावनी दी गई थी कि उसे खत्म करने के प्रयास की संभावना है और उसे देश छोड़ने की सलाह दी गई थी। सिमरनजीत सिंह मान ने

अभिग्रहण ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया । कामीकर सिंह के पास से 62,722.00 रुपए मूल्य के नोट अभिगृहीत किए गए । कहा जाता है कि पुलिस अधिकारियों को 25,000.00 रुपए रिश्वत के रूप में देने के लिए कहा गया था । जगपाल सिंह के सूटकेस में से "सिख एण्ड फारेन अफेयर्स" नामक एक अंग्रेजी की पुस्तक अभिगृहीत की गई और भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, श्रीलंका और नेपाल का एक संयुक्त सड़क मानचित्र अभिगृहीत किया गया । अन्य चीजें जो अभिगृहीत की गई थीं, वे थीं नरेन्द्र सिंह मुल्लर द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक, जिसमें सरकार विरोधी और सिख पृथकतावादी प्रचार का उल्लेख बताया गया है, एक नोट-बुक जिसमें विश्व के प्रमुख भूमिगत संगठनों के बारे में सामग्री अंतर्विष्ट थी, जो मान के हस्तलेख में बताई गई थी, एक रजिस्टर, जिसमें यह बताया गया कि मान अमृतसर का इतिहास लिखता था, जिसमें ब्लू स्टार अभियान के फलस्वरूप भारतीय सेना को शत्रु के रूप में वर्णित किया गया बताया गया था । आतंकवादी सिख राष्ट्रवादी वर्णित किए गए बताए गए और मातृभूमि के रक्षक बताए गए तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी, तत्कालीन प्रधानमंत्री का अपमानजनक उल्लेख किया गया था । चौकी पर सिमरनजीत सिंह मान का एक फोटो था और यह सत्यापित किया गया कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में सिमरनजीत सिंह मान होने का संदेह था, वास्तव में सिमरनजीत सिंह मान है । अन्य व्यक्तियों ने अपने नाम कमिकर सिंह, चरण सिंह, जगपाल सिंह और रघुबीर सिंह बताए । कमिकर सिंह वह व्यक्ति था, जिसने रिश्वत देने के लिए कहा था । इसके बाद भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 124-क 123, 153-क, 505 और 120-ख तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(iii) के अधीन अपराधों के लिए जोगबानी पुलिस थाने पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अन्वेषण शुरू किया गया । 11 दिसम्बर, 1986 को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क, 505 और 120-ख के अधीन अपराधों के लिए पांच अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया के समक्ष आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया ।

2. आरोप-पत्र फाइल करने से पहले 4 दिसम्बर, 1984 को सिमरनजीत सिंह मान पर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरोध आदेश तामील किया गया और उसे भागलपुर जेल भेज दिया गया । अन्य चार अभियुक्त भी राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम क अधीन भागलपुर में निरुद्ध किए गए । 1 मार्च, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान को छोड़कर अन्य चार अभियुक्तों ने दांडिक मामले में जमानत के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया से आवेदन किया, जिनके बारे में उस समय अन्वेषण चल रहा था, और उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) के परन्तुक (क) के अधीन रिहा करने की मांग की । विद्वान् मजिस्ट्रेट ने उन्हें जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया किन्तु यह शर्त लगाई कि प्रतिभू अरड़िया कस्बे के निवासी हों । चार अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रतिभुओं को पूर्णिया से या नकद में स्वीकार करने की मजिस्ट्रेट से प्रार्थना करते हुए एक अर्जी फाइल की । वह अर्जी अस्वीकार कर दी गई । अन्ततोगत्वा चार अभियुक्तों को अरड़िया से प्रतिभू मिल गए किन्तु फिर भी उन्हें रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध थे । सिमरनजीत सिंह मान को भी 28 अक्तूबर, 1985 को उसके आवेदन पर धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़े जाने का निदेश दिया गया । उस पर भी वही शर्त अधिरोपित की गई कि प्रतिभू अरड़िया के ही हों । उसने 29 अक्तूबर,

1985 को आवश्यक प्रतिभू दे दिए। किन्तु उसे रिहा नहीं किया जा सका क्योंकि वह राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन निरुद्ध था। उसी समय गौरी शंकर झा ने जो पांचों अभियुक्तों का प्रतिभू था, एक अर्जी फाइल की और उसने न्यायालय में स्वयं हाजिर होकर यह प्रार्थना की कि उसे प्रतिभुत्व से मुक्त कर दिया जाए, क्योंकि वह अभियुक्त व्यक्तियों का प्रतिभू रहना नहीं चाहता है। 5 दिसम्बर, 1985 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने आदेश देकर उस प्रतिभू को मुक्त कर दिया और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 444(2) के अधीन गिरफ्तारी के प्ररूपिक वारण्ट जारी कर दिए। इसी प्रक्रम पर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने 9 दिसम्बर, 1985 को सिमरनजीत सिंह मान के खिलाफ किया गया निरोध आदेश अभिखंडित कर दिया। न्यायिक मटिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, अरड़िया के न्यायालय में 14 दिसम्बर, 1985 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई थी।

3. विद्वान् मजिस्ट्रेट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 121-क, 123, 124-क, 153-क, 165-क और 120-ख के अधीन 18 दिसम्बर, 1985 को मामले का संज्ञान किया। उसी दिन उन्होंने यह भी आदेश किया कि सिमरनजीत सिंह मान को सुरक्षा के हित में भागलपुर में केन्द्रीय कारागार में रखा जाए। 19 दिसम्बर, 1985 को अन्वेषण अधिकारी ने एक अर्जी फाइल करके मामले का तेजी से विचारण करने की प्रार्थना की क्योंकि यह एक विशेष महत्व का मामला था। 20 दिसम्बर, 1985 को अभियुक्त रघुबीर सिंह, कामीकर सिंह और चरणसिंह की ओर से नए जमानत-बंधपत्र फाइल किए गए। किन्तु जमानत बंधपत्र नामंजूर कर दिए गए, क्योंकि कृत्यानन्द मिश्र प्रतिभू न तो अभियुक्त व्यक्तियों के नाम बता सका और न ही उनके पिता के। 2 जनवरी, 1986 को सभी अभियुक्त अभिरक्षा में से मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए गए। मजिस्ट्रेट ने उन्हें 13 जनवरी, 1986 तक के लिए फिर अभिरक्षा में भेज दिया। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से पहले फाइल की गई एक अर्जी की सुनवाई आरम्भ की। उसमें यह अनुरोध किया गया था कि कृत्यानन्द मिश्र को प्रतिभू के रूप में स्वीकार कर लिया जाए क्योंकि उसे पहले भी एक बार प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया था। प्रार्थना की गई कि तारीख 20 दिसम्बर, 1985 का आदेश वापस ले लिया जाए। वह अर्जी इस आधार पर नामंजूर कर दी गई कि पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन नहीं किया जा सकता। बाद में उसी दिन दो प्रतिभुओं, मीर मजीद और कृत्यानन्द मिश्र ने यह प्रार्थना करते हुए अर्जी फाइल की कि उन्हें प्रतिभुत्व से मुक्त कर दिया जाए क्योंकि वे अभियुक्त व्यक्तियों के लिए प्रतिभुत्व नहीं रहना चाहते। 7 जनवरी, 1986 को पूर्णिया के सैशन न्यायाधीश ने यह मामला श्री आर० बी० राय, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया की फाइल से श्री यू० एन० यादव, संयुक्त मजिस्ट्रेट, प्रथम वर्ग, अरड़िया के न्यायालय में भेज दिया। 10 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने एक आदेश देकर 11 जनवरी, 1986 पुलिस कागजों और आवश्यक आदेशों की प्रतियों के लिए नियत की। 11 जनवरी, 1986 को पांच अभियुक्त व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया। राज्य की ओर से एक अर्जी फाइल की गई कि अभियुक्त व्यक्तियों को पुलिस कागजात दिए जाने के बाद मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाए और तत्पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों की जमानत रद्द करके उन्हें अभिरक्षा में भेज दिया जाए। दूसरी अर्जी पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश के पास मामला भेजने के लिए अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से फाइल की गई थी। अभियुक्त व्यक्तियों ने भी मामले को स्थगित करने के

लिए अर्जी फाइल की थी। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों से अनुरोध किया कि वे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अधीन दिए गए दस्तावेज ले लें किन्तु अभियुक्त व्यक्तियों ने यह कहकर उन्हें लेने से इंकार कर दिया कि पहले उनकी अर्जी का निपटारा किया जाए जिससे कि यदि आवश्यक हो तो वे पुनरीक्षण में उच्चतर न्यायालय में जा सके। लोक अभियोजक ने अभियुक्तों की अर्जी का इस आधार पर विरोध किया कि अभियुक्त व्यक्ति सुपुर्दगी कार्यवाहियों के निपटारे में विलम्ब करने की कोशिश कर रहे हैं। अभियुक्त व्यक्तियों के अधिवक्ता यह निवेदन करते हुए प्रतीत होते हैं कि मामले का विचारण विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में किया जाए। अतः मामला उनके पास भेज दिया जाए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह न्यायालय मामले का संज्ञान पहले ही कर चुका है और संज्ञान करने वाला आदेश वापस नहीं लिया जा सकता। यह प्रश्न कि क्या मामला विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में भेजा जाना चाहिए। उस प्रक्रम पर विचारणीय नहीं होता जब इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा हो कि क्या मामला प्रथमदृष्टया बनता है। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने उसके बाद अभियुक्त व्यक्तियों को दस्तावेज की प्रतिलिपियां देने की तारीख 18 जनवरी, 1986 नियत की।

4. 16 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने नकद जमा की स्वीकृति के लिए या आनुकल्पिक तौर पर अरड़िया कस्बे के बाहर के प्रतिभुओं की स्वीकृति के लिए सिमरनजीत सिंह से भिन्न व्यक्तियों द्वारा दिए गए आवेदन नामंजूर कर दिए। विद्वान् मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि उसे अपने पूर्वतर आदेश का पुनर्विलोकन करने की शक्ति नहीं है। इसके बाद उन्होंने जमानत के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन किया किन्तु वह आवेदन भी नामंजूर कर दिया गया। 18 जनवरी, 1986 को विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मामले का अभिलेख विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) उत्तरी बिहार, पटना को भेजते हुए यह निदेश दिया कि अभियुक्तों को 31 जनवरी, 1986 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किया जाए। 31 जनवरी, 1986 को सिमरनजीत सिंह मान ने नकद प्रतिभूति की स्थापना की और जमानत की मांग की। किन्तु विद्वान् न्यायाधीश ने 7 फरवरी, 1986 को वह आवेदन इस आधार पर नामंजूर कर दिया कि उच्च न्यायालय चार अन्य अभियुक्तों के आवेदन पहले ही नामंजूर कर चुका है। सिमरनजीत सिंह मान ने विशेष न्यायाधीश के आदेश के खिलाफ सीधे ही इस न्यायालय में 1986 की रिट याचिका सं० 137 भी फाइल की। चार अन्य अभियुक्तों ने पटना उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ, जिसके द्वारा मुख्य जमानत आवेदन नामंजूर कर दिए गए थे, 1986 की विशेष इजाज़त अर्जी सं० 630 फाइल की, विशेष न्यायाधीश के समक्ष वाली कार्यवाहियों को अभिखण्डित करने के लिए 1986 की रिट याचिका सं० 136 फाइल की। जब 6 मार्च, 1986 को इन याचिकाओं के ग्रहण के लिए सुनवाई की गई तो श्री मुल्ला ने राज्य सरकार की ओर से सूचना ली और अब वे मामले अंतिम निपटारे के लिए हमारे समक्ष हैं।

5. तारीख 17 फरवरी, 1986 को अभियुक्त व्यक्तियों ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, आरोप-पत्र और साक्षियों के कथनों की प्रतिलिपियां देने के लिए प्रार्थना करते हुए विशेष न्यायाधीश के समक्ष एक अर्जी फाइल की। 7 अप्रैल, 1986 को अभियुक्तों को सभी आवश्यक कागज दे दिए गए। 15 अप्रैल, 1986 को पुलिस ने आगे अन्वेषण हाथ में लिया और 26 अप्रैल, 1986 को एक अनुपूरक आरोप-पत्र पेश किया गया। 14 मई, 1986 को राज्य

सरकार ने दण्ड विधि संशोधन अधिनियम की धारा 6 के अधीन एक अधिसूचना निकाली, जिसके द्वारा श्री वी० पी० वर्मा को भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के मामलों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायाधीश नियुक्त किया। 20 मई, 1986 को विशेष न्यायाधीश (सतर्कता) पटना ने भागलपुर के विशेष न्यायाधीश के पास अभिलेख भेज दिए और यह निदेश दिया कि वे कागज 5 जून, 1986 को भागलपुर के विशेष न्यायाधीश के समक्ष पेश किए जाएं। तत्पश्चात् यह मामला आरोप विरचित किये जाने और अधिकारिता के प्रश्न पर बहस के लिए 8 अगस्त, 1986 तक के लिए अंतिम रूप से स्थगित कर दिया गया। इस प्रक्रम पर मामले ने एक बहुत अजीब मोड़ लिया। राज्य सरकार की ओर से विशेष लोक अभियोजक ने एक अर्जी में यह निवेदन किया कि कामीकर सिंह के खिलाफ धारा 165-क के अधीन और चार शेष अभियुक्तों के खिलाफ धारा 34 के साथ पठित धारा 165-क के अधीन आरोप विरचित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है, सिमरनजीत सिंह के खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता की धारा 124-क, 153-क, 153-ख और 505 के अधीन तथा शेष चारों अभियुक्तों के खिलाफ धारा 120-ख के साथ पठित धारा 121-क, 124-क, 153-क, 153-ख और 505 के अधीन आरोप विरचित करने को न्यायोचित ठहराने के लिए भी साक्ष्य है, कि धारा 165 और धारा 34 के साथ पठित धारा 165-क के अधीन अपराध एक ही संव्यवहार के अनुक्रम में धारा 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों के रूप में नहीं किए गए थे और इसलिए यह आवश्यक है कि धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराधों का विचारण धारा 124-क के अधीन वाले अपराधों से पृथक् किया जाए। लगभग इसी आशय की एक दूसरी अर्जी अभियुक्तों की ओर से फाइल की गई थी। उसमें यह दलील दी गई थी कि संयुक्त विचारण अनुज्ञेय नहीं है। विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने वे आवेदन स्वीकार कर लिए और यह अभिनिर्धारित किया कि अपराध एक ही संव्यवहार के अनुक्रम में नहीं किए गए थे, अतः धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराधों का विचारण अन्य अपराधों से पृथक् किया जाना चाहिए। इसके बाद विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह धारा 121-क, 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों के लिए अभियुक्तों का विचारण करने के लिए सक्षम नहीं है क्योंकि अरड़िया के मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द नहीं किया था। इन अपराधों के बारे में विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह निदेश दिया कि अभिलेख विधि के अनुसार आगे कार्यवाही करने के लिए पूर्णिया के जिला सेशन न्यायाधीश के पास वापस भेजा जाए।

6. यह अभिकथन करते हुए कि विशेष लोक अभियोजक को विशेष न्यायाधीश के समक्ष यह निवेदन करते हुए कोई अर्जी फाइल करने का अनुतोष कभी नहीं दिया गया था कि धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराध और धारा 121-क, धारा 124-क आदि के अधीन वाले शेष अपराध एक ही संव्यवहार के अनुक्रम में नहीं किए गए थे, अतः उनका विचारण पृथक् किया जाना चाहिए, बिहार राज्य ने पटना उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका फाइल करके विशेष न्यायाधीश के समक्ष आगे कार्यवाहियां रोकने का आदेश ले लिया। धारा 34 के साथ पठित धारा 165 और 165-क के अधीन वाले अपराध तथा धारा 121-क, धारा 124-क के अधीन वाले अपराधों में सम्पर्क का प्रश्न और धारा 121-क, धारा 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों का विचारण करने की विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता का

प्रश्न हमारे समक्ष उठाए गए थे। किन्तु हम उन प्रश्नों पर कोई राय व्यक्त करना नहीं चाहते; क्योंकि इन प्रश्नों पर उच्च न्यायालय अपने समक्ष वाली पुनरीक्षण अर्जी में विचार करेगा।

7 अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई दो रिट याचिकाओं में श्री राम जेठमलानी ने एक प्रबल और सुदृढ़ अभिवाक् पेश किया कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उसके मुवक्किलों का मूल अधिकार बिहार राज्य की चालों से भंग हुआ है और बिहार राज्य का उद्देश्य केवल यह था कि किसी न किसी तरह याचियों को कारागार में रखा जाए। उन्होंने निवेदन किया कि रिश्वत का मामला उस घटना पर आश्रित था जो 29/30 नवम्बर, 1984 की रात को हुई थी और यह कि उस मामले के उस भाग के बारे में अन्वेषण कुछ ही दिनों में पूरा हो गया था। युद्ध छेड़ने आदि के अपराध मुख्यत: उन प्रश्नों पर आधारित हैं जो सिमरनजीत सिंह मान के द्वारा भारत के राष्ट्रपति और अन्य व्यक्तियों को लिखे गए बताए गए हैं तथा इन अपराधों के बारे में अन्वेषण में संभवत: अधिक समय नहीं लग सकता क्योंकि आवश्यक केवल यह था कि पत्रों के प्राप्तिकर्ताओं की परीक्षा की जाती, फिर भी आरोप-पत्र दिसम्बर, 1985 में ही फाइल किया गया और उसके बाद भी अभियोजन पक्ष की ओर से मामले का विचारण रोकने के लिए विभिन्न प्रकार की चालें चली गईं। श्री जेठमलानी के अनुसार अभियोजनपक्ष इस बात से पूरी तरह परिचित था कि अभिकथनों में कोई बल नहीं है, इसलिए वह तब तक मामले को लम्बा खींचने की कोशिश भर कर रहा है जब तक संभव हो सके, ताकि अभियुक्तों को परेशान किया जा सके और उन्हें कारागार में रखा जा सके। उन्होंने निवेदन किया कि युद्ध छेड़ने आदि के अपराधों को सिद्ध करने के लिए कोई भी सामग्री नहीं है, अत: इसी आधार पर कार्यवाहियां अभिखण्डित कर दी जानी चाहिएं। उन्होंने तर्क दिया था कि यदि युद्ध छेड़ने आदि के अपराध सिमरनजीत सिंह मान के द्वारा भारत के राष्ट्रपति और मुख्य सचिव को लिखे गए पत्रों में आधारित थे तो अभियोजन त्यों ही चलाया जा सकता था ज्यों ही वे पत्र प्राप्त हुए थे। अब अभियोजन चलाने और उन्हें रिश्वत के अपराध से जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है जबकि वे पत्र दैनिक समाचार-पत्रों में बहुत पहले प्रकाशित किए जा चुके थे। यह भी निवेदन किया गया कि पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश के समक्ष वाली कार्यवाहियां भी इस कारण से अधिकारितारहित हैं कि वे धारा 121-क, धारा 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों का विचारण करने के लिए आवश्यक नहीं है और इस कारण से भी उन्होंने कार्यपालक शासन के निवेदन पर ही मामले को लिया था, जिसे पटना के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय से पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में मामला अन्तरित करने का कोई प्राधिकार नहीं था। श्री जेठमलानी ने निवेदन किया कि यदि कार्यपालक शासन को अपनी मर्जी के न्यायाधीशों द्वारा मामलों को विनिश्चित करने की इजाज़त दे दी गई तो विधिसम्मत शासन का सिद्धांत ही विफल हो जाएगा।

8. विशेष इजाज़त अर्जियों में श्री जेठमलानी ने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय और विशेष न्यायाधीश ने अभियुक्त व्यक्तियों को नये प्रतिभू या नकद प्रतिभूति देने की इजाज़त न देकर गलती की। उन्होंने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय और विशेष न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की कि मजिस्ट्रेट का आदेश, जिसके द्वारा

1986(9) eILR(PAT) SC 1

उन्हें धारा 167(2) के अधीन जमानत पर रिहा करने का निदेश दिया गया था, विशेष रूप से मामले का संज्ञान लिए जाने के बाद कालान्तर में समाप्त हो गया था।

अब सांविधानिक स्थिति सुस्थिर है कि तेज गति से विचारणाधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार के आयामों में से एक है। देखिए **हुसैनआरा खातून** (I) बनाम **बिहार राज्य**[1] (न्या० भगवती और न्या० कौशल के अनुसार), **कादरा पहाड़िया**(I) बनाम **बिहार राज्य**[2] (न्या० भगवती और न्या० सेन के अनुसार), **कादरा पहाड़िया** (II) बनाम **बिहार राज्य**[3] (न्या० भगवती और न्या० एराडी के अनुसार) और **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **चम्पा लाल पंकाजी शाह**[4] (न्या० चिन्नप्पा रेड्डी, न्या० सेन और न्या० बहरूल इस्लाम के अनुसार) विदेशी अधिकारिताओं में भी जहां युक्तियुक्त समय के भीतर ऋजु विचारण का अधिकार एक सांविधानिक दृष्टि से संरक्षित अधिकार है, वहां उस अधिकार का उल्लंघन समुचित मामलों में दोषसिद्धि को अभिखण्डित करने के लिए या आगे कार्यवाहियां रोकने के लिए पर्याप्त माना गया है। **स्ट्रंक** बनाम **संयुक्त राज्य अमरीका**[5] और **बारकर** बनाम **विंगो**[6], इन दो मामलों का विनिश्चय संयुक्त राज्य सुप्रीम कोर्ट ने किया था और **बैल** बनाम **डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रोसिक्यूशन, जमायिका**[7]—जमायिका का मामला, जिसका विनिश्चय प्रिवी कौंसिल ने किया था। यहां अनेक विचारणीय प्रश्न उठे हैं। क्या विलम्ब हुआ था? कितना विलम्ब हुआ था—क्या विलम्ब मामले की प्रकृति, विधिक सेवाओं की उपलभ्यता और अन्य सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विलम्ब अपरिहार्य है? क्या विलम्ब अयुक्तियुक्त था? क्या विलम्ब का कोई अंश अभियोजन अभिकरण की स्वेच्छया से या उपेक्षा से किया गया था? क्या विलम्ब का कोई अंश प्रतिरक्षा पक्ष की चालों से हुआ था? क्या विलम्ब अभियोजन और प्रतिरक्षा अभिकरणों के नियंत्रण के बाहर के कारणों से हुआ था? क्या अभियुक्तों के पास तेजी से विचारण के अपने अधिकार का प्राख्यान करने की योग्यता और अवसर था? क्या अपनी प्रतिरक्षा में अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना थी? अपनी प्रतिरक्षा के संचालन में प्रतिकूल प्रभाव की किसी संभावना के बावजूद क्या इतना लम्बा विलम्ब अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए पर्याप्त था। इनमें से कुछ बातों पर **बारकर** बनाम **विंगो**[6] में विचार किया गया है। और भी अनेक प्रश्न उठ सकते हैं, जिनका हम फिलहाल तुरन्त अनुमान नहीं लगा सकते। यह प्रश्न कि क्या तेज विचारण का अधिकार जो अनुच्छेद 21 द्वारा प्रत्याभूत प्राण और स्वाधीनता के मूल अधिकार का अंग है, भंग हुआ है, अंततोगत्वा दाण्डिक न्याय के प्रशासन में ऋजुता का प्रश्न है, तो भी निष्पक्षतापूर्वक कार्यवाही करना नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का सार है। एच० के० 1967(1) ऑल इंगलैंड लॉ रिपोर्ट्स 226 के निर्देश में और एक निष्पक्ष

---

[1] [1979] 5 एस० सी० आर० 169.

[2] ए० आई० आर० 1981 एस० सी० 939.

[3] ए० आई० आर० 1982 एस० सी० 1167.

[4] (1981) 3 एस० सी० सी० 610.

[5] 37 ला एडीशन, सेकेंड 56.

[6] 407 यू० एस० 514.

[7] 1985 (II) आल इंगलैंड ला रिपोर्ट्स 585.

तथा युक्तियुक्त प्रक्रिया वह है, जो अनुच्छेद 21 में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया पद में अनुध्यात है (मेनका गांधी) ।]

10. यहां हमारे सामने क्या है ? पांच व्यक्तियों को प्रकटत: सीमा पार करने के प्रयास में भारत-नैपाल सीमा की तरफ एक जीप में जाते हुए देखा गया । सीमा गश्ती दल ने सोचा कि वे संदिग्ध व्यक्ति हैं । अपने नाम और अपने मां-बाप के नाम के बारे में पूछे गये प्रश्नों के जो उन्होंने उत्तर दिए, वे समाधानप्रद नहीं थे । उनमें से एक पुलिस अधिकारी के रूप में पहचाना गया, जिसे सेवा से पदच्युत कर दिया गया था और जिसकी राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम के अधीन एक निरोधादेश के संबंध में तलाशी थी । समकालीन इतिहास के प्रकाश में और अभियुक्तों के पास मिली दस्तावेजों के प्रकाश में, जिनमें से एक का उल्लेख हम अभी करेंगे, पुलिस दल को आशंका थी कि वे सीमा पार करके युद्ध छेड़ने आदि के अपराध करने के षडयंत्र के अनुक्रम में नैपाल जा रहे हैं । संभव है उनकी आशंका सीमा पार करने के लिए उनकी रिश्वत देने से और भी मजबूत हो गई हो । वह पुलिस अधिकारी जिसे उन्होंने पकड़ा था, यद्यपि प्रत्यक्षत: पंजाबी था, पहले महाराष्ट्र राज्य में नौकरी करता था जबकि दूसरे कलकत्ता के थे । देश के विभिन्न भागों के अलग-अलग व्यक्ति, जिनका इसके सिवाय आपस में कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं था कि वे एक ही समुदाय के प्रतीत होते थे, देश की सीमा पार करने का एक साथ प्रयास कर रहे थे, इससे पुलिस को प्रकटत: देश में व्याप्त राजनीति की स्थिति के संदर्भ में संदेह हो गया कि वे उस समुदाय के व्यक्तियों के एक समूह के हैं जो सरकार के खिलाफ अभियान चला रहे हैं । आप इसे चाहे आन्दोलन कह सकते हैं या युद्ध छेड़ना कह सकते हैं या आशंका जो उनके पास मिले पत्रों से और भी मजबूत हो गई होगी । हो सकता है कि इन परिस्थितियों के कारण आशंका से अधिक कुछ नहीं हो सकता था बल्कि पुलिस द्वारा अन्वेषण को न्यायोचित ठहराने के लिए वह आशंका पर्याप्त थी ।

11. हम यहां विषयान्तर करना चाहेंगे और जेठमलानी के निवेदन पर विचार करना चाहेंगे कि राष्ट्रपति को संबोधित पत्र यह दर्शाता है कि सिमरनजीत सिंह मान उन लोगों के पुनर्वास में अपने आपको समर्पित कराना चाहता था, जिन्हें सैनिक कार्रवाई के दौरान नुकसान हुआ था और वह पत्र सरकार के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का षडयंत्र का कभी भी साक्ष्य नहीं हो सकता । यह सही है कि उस लम्बे पत्र में यह वाक्य है "भविष्य में मैं उन लोगों के पुनर्वास के लिए अपने आपको समर्पित कर दूंगा जिन्हें सैनिक कार्रवाई के दौरान नुकसान हुआ है ।" हमारे लिए यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि इस पत्र में आग भड़काने के लिए पर्याप्त सामग्री है । हम पत्र में किए गए अन्य कथनों का उल्लेख करना नहीं चाहते । संभव है कि संवेदनशील लोगों के मन और कार्यों पर इन बेबाक कथनों का बहुत खतरनाक प्रभाव पड़े । एक उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति होने के नाते और एक उच्च अधिकारी होने के नाते सिमरनजीत सिंह मान का अपनी पदच्युति के बाद कुछ लोगों की नजरों में एक हीरो और शहीद के रूप में उभरकर आना स्वाभाविक था । उसके कथनों पर उन्होंने उपदेशात्मक सच्चाई के रूप में और देववाणी के रूप में माना जिसके अनुसार उन्हें कर्म करना चाहिए । यदि वह पत्र राष्ट्रपति को संबोधित रहता और प्रकाशित न होता तो इससे कोई भी हानि न होती । किन्तु हालांकि वह पत्र राष्ट्रपति को संबोधित था, फिर भी वह एक खुला पत्र कहा जाता है जो व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए था । यह ठीक है कि वह सम्पूर्ण पत्र दैनिक

समाचार-पत्र में प्रकाशित किया जा चुका था और उसकी एक प्रति उस समय अभियुक्तों के पास थी, जब उन्हें रोका गया था और उनकी तलाशी ली गई थी । हम यह नहीं जानते कि क्या उनमें से कोई अभियुक्त प्रचार-प्रसार के लिए जिम्मेदार है और क्या वह षडयंत्र के अनुसरण में था । संभव है कि सिमरनजीत सिंह मान का तात्पर्य कोई हानि पहुंचाना न हो और पत्र की अंतर्वस्तु एक कड़वाहट के प्रबल उद्गारों के सिवाय कुछ न हो और एक कट्टरपंथी की भाषा में दुखी किन्तु सच्चा था । इसके विपरीत, यह संभव है कि पत्र का उद्देश्य आस्था का दस्तावेज तैयार करना था और उसका इसी रूप में इस्तेमाल किया गया था । ये सब बातें विचारण के समय साक्ष्य में आनी चाहिएं ।

12. अब हम पुनः उसी बात पर आते हैं जो पहले कह रहे थे । यदि पुलिस अधिकारियों के पास किसी षडयंत्र की आशंका के लिए कोई औचित्य था तो पंजाब, दिल्ली, महाराष्ट्र, कलकत्ता और देश के अन्य भागों में षडयंत्र के बारे में अन्वेषण की आवश्यकता को जन्म देने के लिए देश में अन्यत्र षडयंत्र के प्रभावों की आशंका करना भी उनके लिए न्यायोचित होता । यदि अन्वेषण अभिकरण को युद्ध छेड़ने के षडयंत्र की आशंका थी तो जहां हीं भी उसे साक्ष्य मिले, उसकी तुलना करना उसका प्रथम कर्तव्य था और उसे पत्रों को पढ़ाकर और पत्रों के प्राप्तिकर्ताओं की परीक्षा करके ही संतुष्ट नहीं होना था । यह कहना भी सही नहीं है कि युद्ध छेड़ने का पक्षकथन पूरी तरह भारत के राष्ट्रपति को संबोधित पत्रों पर आधारित है । अतः अन्वेषण अभिकरण के लिए इतना ही आवश्यक था कि वह पत्रों की प्राप्तिकर्ताओं की परीक्षा करता । वे पत्र केवल साक्ष्य की मदें हैं न कि सम्पूर्ण साक्ष्य ।

13. बिहार राज्य की ओर से फाइल किए गए शपथ-पत्रों में से और अपने समक्ष पेश किए गए अभिलेखों से हमारा निष्कर्ष है कि अन्वेषण अभिकरण ने जोगबाणी (पूर्णिया) में ही जांच नहीं की थी बल्कि दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई और पंजाब, महाराष्ट्र तथा नैपाल में भी की थी । तथ्यों का परिशीलन और उन्हें एक साथ जोड़ना तथा उस समय एक क्रमबद्ध कार्यवाही करने की योजना जब सारे तथ्य ज्ञात हों, एक चीज है और यह करना बिलकुल दूसरी चीज है जब तथ्यों का पता लगाया जाए या उन्हें ढूंढ़ निकाला जाए, विशेष रूप से संदिग्ध षडयंत्रों के मामलों में जबकि संवेदनशील और राजनीतिक प्रकृति की जटिलताओं और अड़चनों से होकर गुजरना पड़ता है, जिनमें अन्वेषण अभिकरण को बड़े परिश्रम से और सीमाओं के अंदर कदम उठाने होते हैं, अतः अन्वेषण अभिकरण पर धीमी प्रगति का दोषारोपण नहीं किया जा सकता जो उन्होंने इस प्रकार के मामले का अन्वेषण करने में की है । यह सही है कि बहुत लम्बे अरसे तक अन्वेषण बिल्कुल निष्क्रिय प्रतीत होता है, किन्तु इस निष्क्रियता में हमें कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता । हमें यह ध्यान रखना होगा कि इस मामले का ही अन्वेषण अन्वेषण अभिकरण का काम नहीं था, अन्य मामले और काम भी रहे होंगे । हमारे देश में पुलिस अपराधों के बारे में छानबीन करने की ही प्रभारी नहीं है, अपितु विधि और व्यवस्था का प्रभार भी उनके पास है । हमें देश के विभिन्न भागों में व्याप्त असाधारण विधि और व्यवस्था की स्थिति को ध्यान में रखना होगा, जिसके कारण पुलिस पर बहुत बड़ा अतिरिक्त बोझा आ गया है । हमारा समाधान हो गया है कि ऐसा विलम्ब जो इस मामले के अन्वेषण में हुआ है, अकारण नहीं था और यह कि यह मामले की प्रकृति के फलस्वरूप था और देश में व्याप्त सामान्य स्थिति के फलस्वरूप था । हम सरसरी तौर पर यह भी कहना

1986(9) eILR(PAT) SC 1

चाहेंगे कि प्रस्तुत मामले के अभियुक्त उन व्यक्तियों के प्रवर्ग में नहीं आते जो स्वयं अपनी देखरेख करने में दक्ष नहीं हैं। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो जब कभी और जहां कहीं आवश्यक हो, अपने अधिकारों पर जोर दे सकते हैं और जिन्होंने वस्तुतः आवश्यकता पड़ने पर अपने अधिकारों का प्राख्यान किया है। जैसाकि समय-समय पर मजिस्ट्रेट और विशेष न्यायाधीश के समक्ष फाइल की गई अनेक अर्जियों से प्रकट है। हम यह कहना नहीं चाहते कि अभियुक्तों को अपने अधिकारों पर जोर देने की उनकी योग्यता के कारण दण्डित किया जाए और विलम्ब के खिलाफ उनकी आवाज दबा दी जाए किन्तु जैसा कि **बारकर** बनाम **विंगो**[1] में न्या० पोवैल तथा **बैल** बनाम **डी० पी० पी० ऑफ जमायिका**[2] में लार्ड टैमपलमैन ने उल्लेख किया था, कोई व्यक्ति अपने अधिकार से वंचित हुआ है या नहीं, यह अवधारण करने के लिए जिन बातों पर विचार किया जाना चाहिए, उनमें से एक अपने अधिकारों का प्राख्यान करने का अभियुक्त का उत्तरदायित्व है। कहा गया था—

> "क्या और कैसे कोई प्रतिवादी अपने अधिकारों का प्राख्यान करता है, इसका घनिष्ठ सम्बन्ध उन अन्य बातों से है, जिनका हमने उल्लेख किया है। उसके प्रयास की प्रबलता विलम्ब की लम्बाई से प्रभावित होगी। कुछ सीमा तक विलम्ब के कारण से और अधिकांशतः वैयक्तिक विद्वेष के कारण जो हमेशा आसानी से नहीं पहचाना जाता है, जो वह अनुभव करता है। प्रतिवादी जितना अधिक अपने अधिकार से वंचित होगा, उतना ही प्रतिवाद करना अधिक संभाव्य है।"

हमारा निष्कर्ष है कि वर्तमान रिट याचिकाओं को फाइल करने तक अभियुक्तों ने विलम्ब के बारे में कोई गम्भीर आपत्ति नहीं की थी। हम यह देखते हैं कि आरोप-पत्र फाइल किए जाने के बाद कम से कम दो मौकों पर अभियोजन अभिकरण ने बहुत तत्परतापूर्वक मामले का निपटारा करने की चिन्ता व्यक्त की है। विद्वान् विशेष न्यायाधीश के आदेश-पत्र से हमें यह दिखाई पड़ता है कि 19 दिसम्बर, 1985 को लोक अभियोजक ने उनके समक्ष अर्जी फाइल करके मामले का तेजी से विचारण करने की प्रार्थना की थी क्योंकि यह एक विशेष महत्व का मामला था। आदेश-पत्र से हमें पता चलता है कि 9 जनवरी, 1986 को लोक अभियोजक ने एक दूसरी अर्जी फाइल करके पुनः प्रार्थना की कि मामले का तेजी से निपटारा करने के लिए जल्दी ही तारीख नियत की जाए। मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम यह नहीं समझते कि अन्वेषण में और मामले के विचारण में इतना अधिक विलम्ब हुआ है कि तेज विचारण के अभियुक्त के अधिकार के अतिलंघन के आधार पर कार्यवाहियों को अभिखण्डित कर दिया जाए। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उनके मूल अधिकार का एक अंग है। हम समझते हैं कि प्रस्तुत मामले में हमारा यही निदेश अपेक्षित है कि विचारण जल्दी आरम्भ किया जाए और रोजाना हो।

14. श्री जेठमलानी ने बड़े परिश्रमपूर्वक दलील दी कि धारा 165-क के अलावा आरोप-पत्र में वर्णित किसी भी अपराध के लिए आरोप विरचित करने के लिए आवश्यक कोई भी सामग्री नहीं थी। इस प्रश्न पर हम कोई राय जाहिर नहीं करना चाहते। यह

---

[1] 407 यू० एस० 514.

[2] 1985 (II) आल इंगलैंड लॉ रिपोर्ट्स

ऐसा विषय नहीं है, जिसका विवेचन संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई याचिका में किया जाए। हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि यह न्यायालय इस बात पर विचार करने के लिए कि क्या आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए साक्ष्य है या नहीं, यह न्यायालय अपने आपको मजिस्ट्रेट या विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में नहीं बदल सकता।

15. दो अन्य प्रश्न, एक धारा 121, 121-क आदि के अधीन अपराधों के लिए अभियुक्तों का विचारण करने की विशेष न्यायाधीश की अधिकारिता के संबंध में है और दूसरा यह है कि धारा 34 के साथ पठित धारा 165-क और 165-ग के अधीन वाले अपराधों और धारा 121 और 121-क आदि के अधीन वाले अपराधों में क्या संबंध है, ये ऐसे प्रश्न हैं, जिन पर पटना उच्च न्यायालय को विनिश्चय करना है। अतः हम इन प्रश्नों को उच्च न्यायालय के विनिश्चय के लिए छोड़ते हैं।

16. हमारे समक्ष एक दूसरा प्रश्न उठाया गया था और वह यह था कि कार्यपालक सरकार ने वर्तमान मामले का विचारण करने के लिए पूर्णिया के विशेष न्यायाधीश को चुना था। निवेदन किया गया कि यदि अभियोजक को मामले का विचारण करने के लिए उसकी मर्जी का न्यायाधीश दे दिया जाए तो इससे विधिसम्मत शासन के सिद्धांत और विधि के समक्ष समता के सिद्धांत का हनन होता है, इतना कुछ भयंकर नहीं हुआ जितना श्री जेठमलानी ने बताया है। वास्तव में हुआ यह कि विशेष न्यायाधीश का न्यायालय दण्ड विधि संशोधन अधिनियम की धारा 6 के अधीन पूर्णिया खण्ड के लिए बनाया गया था और श्री बिंदेश्वरी प्रसाद वर्मा, अपर जिला न्यायाधीश, पश्चिम चम्पारन, जिन्हें भागलपुर के अपर जिला न्यायाधीश के रूप में स्थानान्तरण के आदेश थे, विशेष न्यायाधीश के रूप में पदाभिहित किया गया था। यह जोगबाणी पुलिस स्टेशन सं० 110/84 वाला मामला कोष्ठकों में अंकित किया गया था क्योंकि यह प्रकटतः ऐसा मामला था, जिसका विचारण दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के अधीन पूर्णिया में होना था। पूर्णिया खण्ड के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय बनाया गया था क्योंकि यह सोचा गया था कि अभियुक्तों के लिए और सुरक्षा के हित में यह सुविधाजनक होगा कि मामले का विचारण भागलपुर में ही किया जाए, जहां अभियुक्त कारागार में थे, न कि मामले का विचारण पटना में किया जाए जहां पर अभियुक्तों को हर सुनवाई पर भागलपुर से ले जाना पड़ता। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, अभियुक्तों को सुरक्षा के हित में भागलपुर की कारागार में रखा गया था। हमें दण्ड विधि संशोधन अधिनियम के अधीन भागलपुर में पूर्णिया खण्ड के लिए विशेष न्यायाधीश का न्यायालय बनाने में और उस न्यायालय में पीठासीन होने के लिए किसी न्यायाधीश के पदाभिधान में कोई दुर्भावना दिखाई नहीं पड़ती।

17. श्री जेठमलानी ने इस बात पर जोर दिया कि सिमरनजीत सिंह मान के अलावा अन्य अभियुक्तों के मामले में ऐसी कोई बात नहीं है, जो उन्हें धारा 121-क, 124-क आदि के अधीन वाले अपराधों से जोड़ती हो। उन्होंने कहा कि उन्होंने उनमें से एक भी पत्र नहीं लिखा था जो तलाशी के दौरान मिले थे। हम केवल यही राय प्रकट करना चाहते हैं कि अकेले विद्रोहात्मक सामग्री का लेखन किसी भी अपराध का सार नहीं होता। राजद्रोहात्मक सामग्री का वितरण या परिचालन भी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार पर्याप्त हो सकता है। षडयंत्र के मामले में दूत के रूप में काम लेना भी कभी-कभी काफी होता

1986(9) eILR(PAT) SC 1

है। यह भी आवश्यक नहीं है कि कोई व्यक्ति आदि से अंत तक किसी षडयंत्र में भागीदार हो। षडयंत्रकारी षडयंत्र के अनुक्रम में प्रक्रम से प्रक्रम पर आकर गायब भी हो सकते हैं। हम विद्वान् काउन्सेल के निवेदन के बारे में और अधिक नहीं कहना चाहते। क्या आरोप विरचित करना न्यायोचित ठहराने के लिए अभिलेख पर इस समय उपलभ्य साक्ष्य विचारण न्यायालय का विषय है, हमारा नहीं, हम इस पर कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं।

18. बाद में जो घटनाएं घटी हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए हम यह समझते हैं कि हम जो समुचित निदेश दे सकते हैं, वह यह है कि पटना उच्च न्यायालय उसके समक्ष की दाण्डिक पुनरीक्षण अर्जी का निपटारा तीन या चार सप्ताह के भीतर जितना जल्दी हो सके, कर दे। जबकि पुनरीक्षण अर्जी का परिणाम चाहे कुछ भी हो उच्च न्यायालय को विशेष न्यायाधीश या अन्य न्यायाधीश को, जिसे मामले का विचारण करना हो अथवा किसी भी मामले का तत्परतापूर्वक विचारण करने के लिए निदेश देना चाहिए और मामले या मामलों का विचारण करने के लिए तथा रोजाना विचारण की कार्यवाही करने के लिए एक निकट तारीख नियत करनी चाहिए।

19. इसके बाद हम अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई दो अर्जियों पर आते हैं। हम यह पुनः कहना चाहेंगे कि पांच अभियुक्तों को 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा न करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण धारा 167(2) के परन्तुक (क) के अधीन जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया गया था। स्मरण रहे कि पुरानी दण्ड प्रक्रिया संहिता में धारा 167(2) के परन्तुक का समविषयक कोई उपबंध नहीं था। यह परन्तुक 1973 की नई संहिता में पहली बार शामिल किया गया था। परन्तुक को पुरःस्थापित करने का कारण उद्देश्यों और कारणों के कथन में इस प्रकार बताया गया था—

> "इस समय धारा 167 मजिस्ट्रेट को अभियोजनाधीन किसी अभियुक्त का तलाशी और निरोध कुल मिलाकर 15 दिन से अनधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत करने के लिए मजिस्ट्रेट को समर्थ बनाती है। शिकायत की जाती है कि इस उपबंध का पालन में कम, भंग में अधिक उपयोग होता है और पुलिस वास्तव में अन्वेषण में बहुत लम्बा समय लेती है। संदिग्ध वैधता की परिपाटी बहुत बढ़ गई है, जिसके द्वारा पुलिस प्रारम्भिक या अपूर्ण आरोप-पत्र फाइल करती है और धारा 344 के अधीन प्रतिप्रेषण के लिए न्यायालय में समावेदन करती है। इस धारा का उद्देश्य अन्वेषण के प्रक्रम पर लागू होना नहीं है जबकि कुछ मामलों में अन्वेषण में विलम्ब की गलती से हो सकता है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे भी असली मामले हो सकते हैं, जिनमें 15 दिन में अन्वेषण पूरा करना बाध्य न हो। आयोग से सिफारिश की थी कि यह अवधि 60 दिन कर दी जाए किन्तु यदि ऐसा किया जाता है तो 60 दिन की अवधि एक नियम बन जाएगी और इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि उल्लिखित अवधि परिपाटी के रूप में नहीं चलती रहेगी। विचार किया गया है कि इस समस्या का सबसे समाधानप्रद हल 15 दिन से अधिक निरोध की अवधि बढ़ाना होगा जब कभी उसका समाधान हो जाए कि ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त आधार हैं।" (वर्तमान संहिता की धारा 304 की तत्स्थानी पुरानी संहिता की धारा 344)।

20. नए परन्तुक का प्रभाव यह है कि यदि अन्वेषण अभिकरण 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा नहीं कर पाता है तो अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार है। अन्वेषण अभिकरण के व्यतिक्रम के कारण धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति को कानूनी तौर पर संहिता के अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए इस अध्याय के अधीन रिहा किया समझा जाएगा। ऐसा स्वयं धारा 167(2) के परन्तुक में उपबंधित है। पहले तो इसका अर्थ यह है कि बंधपत्र और प्रतिभुओं विषयक उपबंध लागू होते हैं। धारा 441 बंधपत्र पर छोड़े जाने के लिए आदिष्ट व्यक्तियों द्वारा प्रतिभुओं सहित या के बिना बंधपत्र के निष्पादन के लिए उपबंध करती है। बंधपत्र विषयक उपबंधों में से एक धारा 445 है जो न्यायालय को प्रतिभुओं सहित या के बिना बंधपत्र निष्पादित करने के लिए अपेक्षित रीति द्वारा बंधपत्र के निष्पादन के बदले धनराशि स्वीकार करने में न्यायालय को समर्थ बनाती है। यदि बंधपत्र निष्पादित कर दिया जाता है (या उनके लिए निक्षेप स्वीकार कर लिया जाता है) तो अभियुक्त व्यक्ति की जमानत मंजूर करने वाले न्यायालय से उस जेल के भारसाधक अधिकारी को रिहाई का आदेश जारी किया जाए, जिसमें ऐसा अभियुक्त व्यक्ति रखा गया है। सिविल प्रक्रिया संहिता के शब्दों में धारा 441 और 442 अभियुक्त व्यक्तियों के जमानत पर छोड़ने के आदेश के निष्पादन के उपबंधों की प्रकृति की हैं। महत्वपूर्ण यह है कि ऐसी कोई काल-सीमा नहीं है, जिसके भीतर जमानत पर छोड़ने के आदेश के बाद उसे निष्पादित किया जाए। प्रायः जमानत पर रिहा करने के आदेश के तुरन्त बाद बंधपत्र देना अभियुक्त व्यक्तियों के लिए कठिन होता है।ऐसा प्रायः अभियुक्त व्यक्तियों की गरीबी के कारण होता है। प्रायः ऐसा भी होता है कि विभिन्न कारणों से अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा पेश किए गए प्रतिभु न्यायालय को स्वीकार्य न हों और ऐसी हालत में न्यायालय में नए प्रतिभु पेश करने पड़ें। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा एकदम जमानत दे पाने के कारण उन्हें जमानत पर छोड़ने के आदेश की प्रसुविधा से वंचित नहीं किया जाएगा। जमानत पर छोड़ने के आदेश तब तक प्रभावी रहते हैं जब तक कि धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन आदेश न किया जाए। ये दोनों उपबंध उस मजिस्ट्रेट को जिसने अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ा है या सेशन न्यायालय को या उच्च न्यायालय को जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति को गिरफ्तार करने का निदेश देने में और उसे अभिरक्षा के सुपुर्द करने में समर्थ बनाते हैं। ये दो उपबंध उस चीज के बारे में हैं, जिसे हम आम बोलचाल की भाषा में जमानत रद्द करना कहते हैं। चूंकि धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत पर छोड़ना अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन जमानत पर छोड़ना समझा जाता है, इसलिए धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़ने का आदेश धारा 437(5) और 439(2) के उपबंधों के भी अधीन है और इनमें से किसी भी उपबंध के अधीन आदेश करके उसे निर्वापित किया जा सकता है। ऐसा हो सकता है कि जिस व्यक्ति को प्रतिभू के रूप में स्वीकार किया गया है, वह बाद में प्रतिभू बना रहना न चाहे। धारा 444 ऐसे व्यक्ति को किसी भी समय पूर्णतया या जहां तक उस प्रतिभू से संबंधित है, बंधपत्र को प्रभावोन्मुक्त किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट से आवेदन करने में समर्थ बनाती है। ऐसा आवेदन किए जाने पर मजिस्ट्रेट से यह अपेक्षित है कि वह यह निदेश देते हुए गिरफ्तारी का वारंट जारी करे कि ऐसे छोड़े गए व्यक्ति को उसके समक्ष लाया जाए। ऐसे व्यक्ति के हाजिर होने पर या

1986(9) eILR(PAT) SC 1

उसके स्वयं अभ्यर्पण पर मजिस्ट्रेट उस बंधपत्र को या तो पूरी तरह या वहां तक जहां तक वह प्रतिभू से संबंधित प्रभावोन्मुक्त किए जाने का निदेश दे और ऐसे व्यक्ति से दूसरा पर्याप्त प्रतिभू खोजने के लिए कहे और यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो वह उसे जेल के सुपुर्द कर सकेगा (धारा 444)। बंधपत्र के उन्मोचन पर प्रतिभू का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है और अभियुक्त व्यक्ति उसी स्थिति में आ जाता है, जिसमें वह बंधपत्र के निष्पादन से ठीक पहले था, जमानत पर छोड़ने का आदेश समाप्त नहीं होता और प्रतिभू के उन्मोचन से तथा नया प्रतिभू सीधे पेश करने में अभियुक्त की असमर्थता से विफल नहीं होता है। अभियुक्त व्यक्ति एक नया स्वीकार्य प्रतिभू पेश करके जमानत पर छोड़े जाने के आदेश का फायदा उठा सकता है। बिहार राज्य के विद्वान् काउन्सेल का तर्क था कि जमानत पर छोड़ने का आदेश अभियुक्त के दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 309(2) के अधीन अभिरक्षा में वापस भेजे जाने पर समाप्त हो जाता है। इस निवेदन में कोई भी सार नहीं है। धारा 309(2) "यदि अभियुक्त अभिरक्षा में है तो उसे प्रतिप्रेषित करने में" न्यायालय को समर्थ बनाती है। यह न्यायालय को उस समय अभियुक्त को प्रतिप्रेषित करने में सशक्त नहीं करती जब वह जमानत पर है। यह धारा न्यायालय को जमानत रद्द करने में समर्थ नहीं बनाती। ऐसा धारा 437(5) और 439(2) के अधीन ही किया जा सकता है। जब किसी अभियुक्त व्यक्ति की जमानत मंजूर की जाती है, चाहे धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन या अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन तो जिस एकमात्र ढंग से जमानत रद्द की जा सकती है, वह है धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन कार्रवाई करना।

21. **नटबर परिडा** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] में न्यायालय ने धारा 167(2) के परन्तुक की अपेक्षा के आज्ञापक स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया था कि यदि अन्वेषण साठ दिन के भीतर पूरा नहीं होता है तो अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर छोड़े जाने के लिए हकदार है। न्यायालय ने कहा था—

> "किन्तु तब परन्तुक (क) में विधानमंडल का समादेश यह है कि यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा और उसे 60 दिन से अधिक की अवधि के लिए निरुद्ध नहीं रखा जा सकता चाहे अन्वेषण तब भी चल रहा हो। अन्तर्राज्यिक गिरोहों या वैसे ही लोगों द्वारा आपराधिक षडयंत्रों, हत्याओं, डकैतियों, लूटों का गम्भीर मामलों में पुलिस के लिए ऐसी परिस्थितियों में जो हमारे देश के विभिन्न भागों में विद्यमान हैं, 60 दिन की अवधि के भीतर अन्वेषण पूरा करना संभव नहीं भी हो सकता है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि विधानमंडल का आशय न्यायालय को विवेकाधिकार देने का नहीं है और उस (न्यायालय) के लिए अभियुक्त को जमानत पर छोड़ना आज्ञापक बनाना है। निस्संदेह परन्तुक (क) में यह उपबंध किया गया है कि धारा 167 के अधीन जमानत पर छोड़े गए अभियुक्त को अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन और उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए छोड़ा गया समझा जाएगा। यह बात जमानत पर उसे छोड़ने वाले न्यायालय को यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता हो तो यह निदेश करने के लिए सशक्त कर सकती

[1] [1975] 3 उम० नि० प० 1284=ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 1465.

है कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए और ऐसी अभिरक्षा में रखा जाए जैसा कि अध्याय 33 में आने वाली धारा 437 की उपधारा (5) में उपबंध किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि संज्ञान करने के पश्चात् प्रतिप्रेषण की शक्ति का प्रयोग नई संहिता की धारा 309 के अधीन किया जाना है। लेकिन यदि 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा करना संभव न हो तो गम्भीर और भयंकर प्रकार के अपराधों में भी अभियुक्त जमानत पर छोड़े जाने का हकदार होगा। ऐसी विधि "अपराधियों के लिए स्वर्ग" हो सकती है किन्तु निश्चित रूप से ऐसा नहीं होगा जैसा कि कभी-कभी न्यायालयों के कारण ऐसा समझ लिया जाता है। यदि ऐसा होगा तो वह विधानमंडल के समादेश के अधीन होगा।"

बशीर बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में यह प्रश्न उठा था कि क्या कोई व्यक्ति जो धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन छोड़ा जा चुका है, बाद में मात्र इसलिए अभिरक्षा में भेजा जा सकता है कि चालान बाद में फाइल किया गया था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि उसे इस प्रकार अभिरक्षा में नहीं भेजा जा सकता। किन्तु यदि उस न्यायालय का यह निष्कर्ष हो कि चालान फाइल किए जाने के बाद विश्वास करने के लिए यह पर्याप्त कारण है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करने तथा अभिरक्षा में भेजना आवश्यक है तो धारा 437(5) के अधीन जमानत रद्द की जा सकती है। न्यायालय ने कहा था—

"धारा 167 की उपधारा (2) और उसके परन्तुक (क) में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन अभिरक्षा में अभियुक्त व्यक्ति के निरोध को साठ दिनों से अधिक की कुल कालावधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा। साठ दिनों की समाप्ति के बाद अभियुक्त व्यक्ति को उस दशा में जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और जमानत दे देता है। यहां तक कोई भी संविवाद नहीं है। प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार से छोड़े गए व्यक्ति की स्थिति तब क्या होगी जबकि पुलिस बाद में चालान फाइल करती है।"

× × ×

"धारा 437 की उपधारा (5) महत्वपूर्ण है। उसमें यह उपबंध किया गया है कि ऐसा कोई न्यायालय जिसने उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया है, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है, वह निदेश दे सकेगा कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाए और उसे अभिरक्षा के सुपुर्द कर दिया जाए। चूंकि धारा 167(2) के अधीन, ऐसे व्यक्ति के बारे में, जिसको इस आधार पर छोड़ा गया है कि वह साठ दिनों से अधिक की कालावधि तक अभिरक्षा में रहा है, यह समझा जाना चाहिए कि उसे धारा 437(1) या (2) के अधीन छोड़ा गया है। धारा 437(5) के अधीन न्यायालय यह निर्दिष्ट करने के लिए सशक्त है कि इस प्रकार से छोड़े गए व्यक्ति को उस दशा में गिरफ्तार किया जा सकता है, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है। यदि न्यायालय

[1] [1978] 4 उम० नि० प० 219=(1977) 4 एस० सी० सी० 410.

ऐसा आवश्यक समझे, तो जमानत रद्द करने संबंधी उसकी शक्ति, उन मामलों में परिरक्षित रहती है जिनमें किसी व्यक्ति को धारा 437(1) या (2) के अधीन जमानत पर छोड़ दिया गया हो और यह उपबंध ऐसे व्यक्ति को लागू होते हैं जिसे धारा 167(2) के अधीन छोड़ दिया गया है। धारा 437(2) के अधीन जबकि ऐसा व्यक्ति जांच होने तक इस आधार पर छोड़ दिया जाता है कि यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं हैं कि उसने अजमानतीय अपराध किया था, तो उसे उस न्यायालय द्वारा अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किया जा सकेगा जिसने उसे जमानत पर छोड़ा था, यदि उसका समाधान हो गया है कि जांच समाप्त होने के बाद ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार हैं। चूंकि धारा 437(1), (2) और (5) के उपबंध ऐसे व्यक्ति को लागू होते हैं, जिसको धारा 167(2) के अधीन छोड़ दिया गया है, इसलिए मात्र यह तथ्य कि उसके छोड़े जाने के बाद चालान फाइल किया गया है, उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने के वास्ते पर्याप्त आधार नहीं है। इस मामले में जमानत रद्द कर दी गई और अपीलार्थियों को गिरफ्तार करने तथा उन्हें अभिरक्षा में सुपुर्द किए जाने का आदेश इस आधार पर किया गया था कि बाद में आरोप-पत्र फाइल कर दिया गया था और यह कि धारा 167(2) के अधीन अपीलार्थियों को छोड़ जाने के लिए निर्दिष्ट करने के पूर्व सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय ने जमानत संबंधी उनके पिटीशनों को गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिया था। यह तथ्य कि धारा 167(2) के अधीन आदेश पारित किये जाने के पूर्व अभियुक्तों के जमानत संबंधी पिटीशन गुणागुण के आधार पर खारिज कर दिए गए थे, धारा 437(5) के अधीन कार्यवाही करने के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं है। और न ही यह विधिमान्य आधार है कि अपीलार्थियों के छोड़े जाने के बाद पुलिस ने चालान फाइल किया था। अभियुक्तों को गिरफ्तार करने और उन्हें अभिरक्षा में सुपुर्द करने के लिए निर्देश देने के पूर्व न्यायालय को धारा 437(5) के अधीन ऐसा करना आवश्यक समझना चाहिए। यह ऐसे न्यायालय द्वारा, जोकि इस निष्कर्ष पर पहुंचता है किया जा सकता है कि चालान फाइल किए जाने के बाद पर्याप्त कारण हैं, कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया था और यह कि यह आवश्यक है कि उसे गिरफ्तार किया जाए और अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किया जाए। वह उसे गिरफ्तार करने और अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने के लिए भी इन आधारों पर आदेश दे सकेगा जैसे कि साक्ष्य में हस्तक्षेप करना या यह कि उसको छोड़ना न्याय के हित में नहीं है। किन्तु यह आवश्यक है कि न्यायालय को इस आधार पर कार्यवाही करनी चाहिए कि उसके बारे में यह समझा गया है कि उसे धारा 437(1) और (2) के अधीन छोड़ा गया है।"

तलब हाजी हुसैन बनाम **मोंडकर**[1] जो पुरानी संहिता के अधीन उत्पन्न मामला था, न्यायालय ने उन आधारों पर विचार किया था, जिन पर जमानत रद्द की जा सकती है। न्यायालय ने कहा था—

"न्याय के उद्देश्यों की ऋजु विचारण की निर्विघ्न प्रवृत्ति से अधिक महत्वपूर्ण

---

[1] ए० आई० आर० 1958 एस० सी० 376.

कोई अपेक्षा नहीं हो सकती; और इसी ऋजु विचारण के चालू रखने के लिए अभियोजन पक्ष उन मामलों में उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का सहारा लेना चाहता है, जिनमें यह अभिकथन किया जाए कि अभियुक्त व्यक्ति, या तो कूट साक्ष्य प्रेरित करके या साक्षियों को तंग करके ऋजु विचारण की सुचारू प्रगति में बाधा डाल रहे हैं। इसी प्रकार यदि अभियुक्त व्यक्ति जो जमानत पर छोड़ दिया जाए, जमानत का उल्लंघन करके विचारण से बचने के लिए विदेश भागने का प्रयास करता है, तो वह पुन: एक ऐसा मामला होगा जिसमें अन्तर्निहित शक्ति का प्रयोग करना न्यायोचित होगा ताकि अभियुक्त को ऋजु विचारण में पेश होने के लिए मजबूर किया जा सके और वह इस तथ्य का लाभ उठाकर कि उसे जमानत पर छोड़ दिया गया है, किसी दूसरे देश में फरार होकर उसके परिणामों से न बच सके। दूसरे शब्दों में, यदि जमानत पर छोड़े जाने के बाद अभियुक्त व्यक्ति का आचरण स्वयं ऋजु विचारण की प्रगति में बाधक बन जाता है और यदि ऐसा कोई दूसरा उपचार नहीं है जो अभियुक्त व्यक्ति के खिलाफ कारगर ढंग से इस्तेमाल किया जा सके तो ऐसे मामले में उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित शक्ति का सहारा लेना विधिसम्मत होगा। अजमानतीय अपराधों के संबंध में ऐसी शक्ति का सहारा लेना आवश्यक नहीं है क्योंकि धारा 497(5) में ऐसे मामलों का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख है।"

22. हमारे विवेचन और निर्णयज विधि का सारांश इस प्रकार है—

"धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन दिया गया जमानत पर छोड़ने का आदेश समय बीतने पर, आरोप-पत्र फाइल करने से धारा 309(2) के अधीन अभिरक्षा में भेजने से विफल नहीं होता। फिर भी, जमानत पर छोड़ने का आदेश धारा 437(5) या धारा 439(2) के अधीन रद्द किया जा सकता है। आमतौर पर जमानत को रद्द करने के आधार मौटे तौर पर ये हैं; न्याय के प्रशासन के सम्यक् अनुक्रम में हस्तक्षेप या हस्तक्षेप का प्रयास, अथवा न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास अथवा उसे दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग। न्याय के सम्यक् अनुक्रम में साक्षियों को परेशान करके या कूट साक्ष्य प्रेरित करके, अन्वेषण में हस्तक्षेप करके साक्ष्य आदि का सर्जन करके या उसे गायब करके हस्तक्षेप किया जा सकता है। न्याय के मार्ग से बचना या बचने का प्रयास, देश को छोड़कर या भूगत होकर या अन्यथा अपने आपको प्रतिभुओं की पहुंच से बाहर करके किया जा सकता है। वह भी इसी प्रकार की या अन्य अविधिपूर्ण कार्यवाहियों में भाग लेकर दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर सकता है। जहां 60 दिन के भीतर अन्वेषण पूरा करने में अभियोजन पक्ष के व्यतिक्रम के कारण धारा 167(2) के परन्तुक के अधीन जमानत मंजूर की गई है, वहां आरोप-पत्र फाइल करके दोष को दूर करने के बाद अभियोजन-पक्ष इस आधार पर जमानत को रद्द करने की मांग कर सकता है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है और उसे गिरफ्तार करना तथा अभिरक्षा में भेजना आवश्यक है। अंतिम वर्णित स्थिति में वस्तुत: बहुत दृढ़ आधार होने चाहिए।

1986(9) eILR(PAT) SC 1

23. प्रस्तुत मामले में उच्च न्यायालय ने और उच्च न्यायालय का अनुसरण करते हुए विशेष न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जमानत पर छोड़ने का आदेश आरोप-पत्र फाइल करने के बारे में समय बीतने के साथ-साथ निष्प्रभाव हो गया था। हम यह बता चुके हैं कि यह मत सही नहीं है। अब प्रश्न यह है कि समुचित आदेश क्या किया जाए ? जमानत पर छोड़ने का आदेश गुणागुण पर किया गया आदेश नहीं था बल्कि व्यतिक्रम पर दिया गया आदेश कह सकते हैं, जो एक ऐसा आदेश होता है जिसका दोष ठीक करने के बाद विशेष कारणों से परिशोधन किया जा सकता है। वह आदेश बहुत पहले किया गया था किन्तु किसी न किसी कारण अभियुक्त अनेक महीनों तक उस आदेश का फायदा नहीं उठा सका। संभवत: उसी कारण अभियोजन अभिकरण ने इस मामले में पैरवी नहीं की और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने यह मान लिया कि वह आदेश आरोप-पत्र फाइल करने से निष्प्रभाव हो गया है। प्रश्न यह है कि क्या अब हमें इस मामले को उच्च न्यायालय के पास भेजना चाहिए ताकि वह अभियोजन-पक्ष को जमानत रद्द करने के लिए उस न्यायालय में समावेदन करने का अवसर दे सके। सम्पूर्ण परिस्थितियों को जमानत का आरम्भिक आदेश किए जाने के बाद बहुत लम्बा समय बीतना, परिणामस्वरूप परिस्थितियों और स्थिति में परिवर्तन, तथा इन निदेशों को जो हमने मामले का तेजी से विचारण करने के लिए अब दिए हैं, ध्यान में रखते हुए हम नहीं समझते कि हम इस प्रक्रम पर इन मामलों में संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन हस्तक्षेप करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करके न्यायोचित कार्रवाई करेंगे। अत: विशेष इजाज़त अर्जियां खारिज की जाती हैं।

विशेष इजाज़त अर्जियां खारिज की गईं।

कृ०